योग सिद्धान्त एवं अध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक-
योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई, एत्मादपुर (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 57 अंक-7
अक्टूबर 2024

प्रकाशन तिथि : 01-10-2024
मूल्य-एक प्रति:25/- वार्षिक: 250/-
आजीवन- 10 वर्ष- 1500/-

अमृतकण

गुकारं च गुणतीतं रूकारं रूपवर्जितम्
गुणातीतमरूपंच योहिस्यात्सगुरूः स्मृतः

गुकार गुणों से अतीत है, रूकार रूप से रहित है, जो गुणों से अतीत और रूप रहित है वह गुरू कहलाता है।

श्रुति स्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरूसेवकाः
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरेवेषधारिणः

श्रुति स्मृति को न जानकर भी जो केवल गुरू के सेवक हैं वे ही संन्यासी कहलाते हैं अन्य केवल संन्यासी के वेषधारी हैं यदि गुरू की सेवा नहीं करते हैं।

गुरोः कृपाप्रसादेन स्वात्मारामो हि लभ्यते
अनेन गुरूमार्गेण ह्यन्तर्ज्ञानं प्रवर्तते

गुरूदेव की कृपा के प्रसाद से अपनी आत्मा आनन्द स्वरूप को प्राप्त होती है। इस मार्ग से अन्तर्ज्ञान उदय होता है।

आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं परमात्मस्वरूपेणम्
स्थावरं जङ्गमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्

ब्रह्मा से छोटे पौधे पर्यन्त परमात्मा के स्वरूप हैं। जगन्मय स्थावर और जंगम परमात्मा को प्रणाम करता हूँ।

वंदेऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरूम्
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्

सच्चिदानन्द स्वरूप, भेद से अतीत, नित्य पूर्ण आकर रहित, गुण रहित स्वात्मा में स्थित जगद्गुरू की मैं वन्दना करता हूँ।

ॐ ॐ ॐ

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः ।
तत्प्रापप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धेय सिद्धये ॥

अर्थः- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सतपुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो ।

वर्ष : 57 अक्टूबर 2024 अंक : 07

अभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते

जन्मानारशताभ्यासा मिथ्या संसारवासना ।
सा चिराभ्याससयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित्॥
तस्मात्सौम्य प्रत्येन पौरुषेणा विवेकिना ।
भोगेच्छां दूरतस्यक्त्वा त्वयमेव समाश्रय ॥

अर्थात्- सैकड़ों जन्मों से झूठी संसारी ममता का अभ्यास हो रहा है इसलिए बिना बहुत काल योगाभ्यास किये वह कभी नष्ट नहीं हो सकती है। हे सौम्य ! इस हेतु से यत्न पुरुषार्थ (सामर्थ्य) और विचार इन तीनों ही के आश्रय होकर योगबल से वासनाओं को दूर ही से त्याग दो।

क

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापकः

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादकः

आचार्य (डा0) दासलाल जी महाराज

संयुक्त सम्पादकः

डा0 विजय सिंह एवं दिनेश शर्मा

लेख की सूची

विभूतिपाद की विभूतियाँ-योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
125 वाँ पावन प्राकट्य दिवस-योगाचार्य डा0 दासलाल जी महाराज	10
श्रीमद भागवत में योग परिचर्चा-डा. विजय सिंह	14
परब्रह्म तत्व क्या है-जगदीश राय बंसल "अधम"	18
आत्म साक्षात्कार-अन्तूराम यादव	23
सत्संग का प्रभात-कृष्ण कुमार पाण्डेय	26
योगी ही उस अविनाशी को देखते हैं-श्री ब्रहमचारी वीरेन्द्र द्वारा प्रेषित	29
महर्षि दयानंद और योग-श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'	33

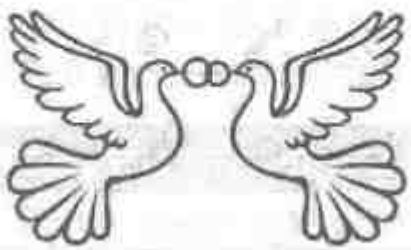

हमारा विशेष लेख-

विभूतिपाद की विभूतियाँ

✲✲ योगयोगेश्वर अवच्छ श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ✲✲

हमने इससे पूर्व अगस्त मास के अंक में विभूतिपाद के विभूतियों का वर्णन करते हुए-'परिणाम त्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम्' इस सूत्र पर व्याख्या लिखते हुए साधक धर्म, लक्षण, अवस्था आदि तीन परिणामों के अन्दर संयम करता हुआ किस प्रकार के भूत और भविष्य के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है एवं-'शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासा-त्संरस्तकद्विभाग संयमात्सर्वभूतस्तज्ञानम्' इस सूत्र को लिख करके प्राणीमात्र की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने की विधि लिखी थी एवं लेख के उपसंहार रूप में समझाया था कि प्रत्येक साधक को सयंमारूण होने के लिए लगातार नियमा नुसार अपने अभ्यास को बढ़ाते रहना चाहिए तभी साधक सफलता की उच्चतम स्थिति को पा सकता है। इससे आगे भगवान् पतंजलि-सावक अतीतकाल में किन-किन जातियों में जन्म लेता हुआ आया है एवं उन जातियों में किस-किस प्रकार के कितने-कितने भोग भोगे हैं: यह, (सब प्रकार का) ज्ञान प्राप्त करने के लिए-संस्कार साक्षातकार की आज्ञा प्रदान करते हैं, वह सूत्र इस प्रकार से है-

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजाति ज्ञानम्।

विभूतिपाद के इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

द्वये खल्वमी संस्काराःत्रस्मृतिक्लेशहेतवो वासनारूपाः, विपाकहेतवोधर्माधर्मरूपाः, ते पूर्वभगवाभिसंस्कृताः परिणामचेष्टानिरोधशक्ति जीवनथ्यर्मवदपरिदृष्टाश्चित्तधर्माः तेषु संयम संस्कार-साक्षात्क्रियायै समर्थः, न च देशकालिन-मित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करण, तदित्थं संस्कार साक्षात्रणात्पूर्वजाति ज्ञानमुत्पद्यते योगिनः, परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणा त्परजातिसंवेदनम् ।

अर्थात् संस्कार दो प्रकार के माने गये हैं एक संस्कार वे हैं जो स्मृति एवं क्लेश आदि के कारण रहते हैं। स्मृतियों के कारण मैंने अमुक जन्म में अमुक प्रकार की जाति में जन्म लिया, अमुक-अमुक कार्य किये। यह संस्कार स्मृति रूप संस्कार कहलाते हैं और इसी प्रकार से अविद्यादि क्लेशों के कारण बनते हैं। अर्थात् विषय-वासना रूप एवं धर्माधर्म के कारण एवं सुख-दुःख आदि

फलों के उत्पादक रहते हैं। यह संस्कार पूर्व जन्म के ही बने बनाये साधक के मन में प्रकट होते रहते हैं और मनुष्य को प्रेरणा देते रहते हैं। यही संस्कार चित्त के धर्म परिणाम रूप क्रिया वाले, निरोध रूप सामर्थ्यता सहित अर्थात् भोगरूप धर्म वाले देखे गये हैं। इन सबमें संयम किया हुआ साक्षात्कार का कारण होता है। किन्तु देश-काल, निमित्त के अनुभव के बिना उनका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । जिस समय योगी देश-काल-निमित्तादि के साथ साक्षात्कार करने की चेष्टा करता है तो उसे अपनी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है एवं इसी प्रकार से किसी दूसरे पुरुष के चित्त-धर्मों में संयम करने से योगी को उसको भी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है। व्याख्यान- इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए। योगी अपने समाधि काल से पूर्व अपने मन में जब ये संस्कार बनाता है कि मैं अपने पूर्व जाति के ज्ञान को प्राप्त करूँ तो देश-काल, निमिनादि के साथ अपने पूर्वानुभूत एवं भुक्त संस्कारों की ओर अपने संयमित मन को फेंकता है तो अपने आप ही योगी के सामने उन संस्कारों का उद्बोधन होने लगता है क्योंकि उस समय योगी का चित्त फोटो खींचने वाले एक कैमरे के रूप में होता हैं। वह किन-किन भोगों को भोगता हुआ आया है क्या उसको जाति थी, उस समय क्या उसके अनुभूतार्थ थे, वह उसकी समाधि में उस परम गुरू ईश्वर के अनुग्रह से प्रकट होने लगते हैं और वह पूर्व जाति के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इस विषय में योग-दर्शन के सूत्रों पर भाष्य लिखने वाले भगवान व्यासदेवजी ने एक उदाहरण दिया हैं, जो इस प्रकार से है।

अत्रैदमाख्यानं श्रूयते-भगवतो जैगीषव्यस्यसंकार साक्षात्करणाद्दशासु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनु पश्यतो विवेकजं ज्ञानं पादुरभवद् अथ भवगवावट-यस्तानुधरस्तमुवाच दशासु महासर्गेषु भव्य त्वादनभिभृत बुद्धिसत्वेनत्वया नरकृति-र्य्यग्गर्भसम्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनु-ष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच-दशासु महासर्गेषु भव्य-त्वादनभिभृतबुद्धिसत्वेन मया नरकतिर्य्य-ग्यवं दुःखं सम्पश्यतादेवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत्किञ्चिदनुभूतं तत्सर्व दुःखमेव प्रत्यवैमि, भगवानावट्य उवाच-यदिदमा युष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्रमं च सन्तोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षि-प्तमिति? भगवान् जैगीषव्य उवाच-विषयसुखापेक्षयैवेदमनुत्रमं सन्तोषसुख-मुक्तं, कैवल्यापेक्षया दुःखमेव बुद्धिसत्व-स्थायं धर्मस्त्रिगुणः त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त इति दुःखस्वरूपस्तृष्णा-दुःख तन्तुस्तृष्णा दुःख सन्तानापागमात्यु प्रसत्रमबाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमु क्तमिति।

अर्थात् इस विषय में पुराणों में एक ये कथा सुनने में आती है कि परमेश्वर्ययुक्त भगवान जैमिगव्य मुनि को संस्कार साक्षात्कार करने से दश महासर्गों के अन्दर होने वाले जन्म परिणाम कर्मों को देखते हुए विवेकज ज्ञान पैदा हुआ। परम ऋषि आवट्य ने जैगिषव्य मुनि से प्रश्न किया कि इन दश महासर्गों के अन्दर भोग-भोगते हुए प्रकाश बुद्धि के द्वारा आपने नरक एवं तीर्य योनियों में होने वाले गर्भ के दुःख को साक्षात्कार करते हुए बार-बार मनुष्य देवयोनियों में जाकर क्या किया, क्या प्राप्त किया? इसके उत्तर में भगवान आवटव्य मुनि को जैगिषव्य मुनि ने उत्तर दिया-दश महासर्गों में भोग अवश्यम्भावी होने से मैंने अपने प्रकाशमय बुद्धि के द्वारा नरक एवं तीर्थकादि योनियों में बार-बार जन्म के दुःखो को देखते हुए एवं देव-मनुष्य योनियों में बार-बार उत्पत्र होते हुए जो कुछ भी अनुभव किया वह केवल दुःख ही दुःख था, यही मैं जानता हूं। इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने पर भगवान् आवटव्य मुनि ने जैगिपव्य ऋषि मुनि से पुनः प्रश्न किया :- जीवनकाल में इन्द्रियों को वश में करके जो सन्तोष सुख प्राप्त होता है क्या उसको भी आपने दुःख पक्ष में ही डाल दिया हैं? इसके उत्तर में भगवान जैगिपव्य मुनि ने कहा विषय सुख की अपेक्षा ही सन्तोष उत्तम है किन्तु कैवल्य सुख भी दुःख ही है क्योंकि वह त्रिगुण वाली बुद्धि का धर्म है और त्रिगुणात्मक जो ज्ञान है वह त्यागने ही योग्य है क्योंकि इसका कारण दुःख रूप तृष्णा का तार ही है। अतः सन्तोष सुख भी त्याज्य है। भगवान् व्यासदेव ने जैगिपव्य मुनि के इस उदाहरण को देकर ये भली प्रकार समझा दिया कि एक योगी अपने जन्म-जन्मान्तर के किस प्रकार से किस प्रकार से साक्षात्कार कर लिया करता है और वह किस प्रकार संस्कारों का साक्षात्कार करके जन्म-जरा-मरण आदि दुःखों को जान कर अपने आपको मोहपाश से निकालकर मुक्ति की ओर बढ़ता है। जैगिपव्य मुनि का उदाहरण तो बहुत पुराना इतिहास की बात है। आज भी जो योगी योगाभ्यास परायण हैं वह अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को देखकर दुःख-द्वन्द को त्यागकर मुक्ति की ओर बढ़ जाते हैं एवं इस दुःख-द्वन्द से छूट जाया करते हैं। वैराग्य का यही एक उत्तम साधन हैं कि साधक अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को योग-दृष्टि से देखे एवं उन दुःख-द्वन्दों से अपने को छुड़ाकर कल्याण-मार्ग की ओर बढ़ाये। भाई-बन्धु स्त्री-पुत्र आदि को एक मोह जनित जाल ही समझें। गर्भोपनिषद् में इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट करके समझा दिया है। जिस समय जीव गर्भावस्था में हुआ करता है तो उसे परमगुरू ईश्वर की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है तब वह

समझा दिया है। जिस समय जीव गर्भावस्था में हुआ करता है तो उसे परम गुरू ईश्वर की कृपा से दिव्य दृष्टि को पाकर अपने जन्म-जन्मान्तर के दुःखों को देखकर महाकष्ट पाता है और उन महा-क्लेशों से निकल जाने की घोर प्रतिज्ञायें करता है। वह प्रकरण इस प्रकार है:-

अथ नवमे मासे सर्वलक्षण ज्ञान-करण सम्पूर्णो भवति। पूर्वजातिं स्मरति। शुभाशुंभ च कर्म विन्दति। पूर्वयोनि सहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया। आहार: शिविधा भुक्ता: पीता नानविधा: स्तना: । जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुन: पुन: यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ।। एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिन: अहो दु:खौदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् । यदि योन्या: प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। अशुभक्षयकतार फलमुक्तिप्रदायकम् । यांद योन्या: प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्। अशुभक्षकर्तारफलमुक्ति-दायकम् । यदि योन्या: प्रमुच्येऽहं तत्साङ्ख्यं योगमभ्यसे । अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्ति प्रदायकम्। यदि योन्या: प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम् । अथ योनिद्वारं सम्पाप्तो यन्त्रेणापीड्यमानो महता दु:खेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संम्पृटस्तदा न स्मरति जन्म-मरणानि न च कर्म शुभाशुंभ विन्दति ।।

अर्थात् नवमा मास जब लगता है तब शरीर बनकर पूरा हो जाता है और वह सभी लक्षणों से समपत्र हो जाता है एवं उस दिव्य दृष्टि को पाकर पूर्व जाति को स्मरण करता है शुभाशुभ कर्मों को समझता है। अपने पूर्व जन्म की हजारों योनियों को देखकर डर जाता है और अपने मन में कहता है अहो ! बड़ा आश्चर्य है मैंने बहुत प्रकार के आहार खाये । नाना प्रकार के स्तनों के दूध पिये, बार-बार जन्मा और मरा। और ! जो मैंने अपने कुटुम्बियों के लिए शुभाशुभ कर्म किये उन सबके कारण मैं अकेला जल रहा हूं । वह सब फल भोगी लोग इधर-उधर चले गये, उन सबके कारण मैं अकेला जल रहा हूँ । ओह ! मैं दुःख के सागर में डूब गया हूँ । बचने का कोई भी उपाय नहीं दिखाई देता । यदि अबकी बार मैं किसी प्रकार से योनिद्वार से निकल गया तो मैं महेश भगवान की शरण लूँगा । जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश हो जाय और मुझे मुक्ति मिल जाय। यदि मैं अबकी बार योनि-द्वार से निकल गया तो भगवान नारायण की शरण लूँगा जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल जाय । यदि अबकी बार मैं योनि द्वार से छूट गया तो मैं सांख्ययोग का अभ्यास करूँगा जिससे मेरे पापकर्मों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल

जाय । यदि मैं अबकी बार योनि द्वार से छूट गया तो सनातन ब्रह्म का ध्यान करूँगा जिससे मेरे पापक्रमों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल जाय ।

इस प्रकार चिन्तन करता हुआ योनिद्वार को प्राप्त कोल्हू मे पेरे जाने के समान महान दुःख को प्राप्त होकर के जन्म लेता हुआ वैष्णवी माया से युक्त वायु का स्पर्श पाकर जन्म और मरण को याद नहीं करता और नहीं शुभाशुभ कर्मों की याद करता है। यही दुःख का आवरण है किन्तु वैराग्य का कारण भी यही है । योगी अपनी योग दृष्टि के द्वारा भगवान् की त्रिगुणात्मिका माया के कष्टों को अनुभव करके शरीर और अपने जन्म-जन्मान्तरों के दुःखों का अनुभव करके दुःख-द्वन्द से छूटना चाहता है किन्तु यह होता उसी स्थिति में है जबकि योगी अपनी योग-दृष्टि के द्वारा अपने पूर्व जन्मों में हुई-हुई जातियों का साक्षात्कार करता है। प्रत्यक्षानुभूति के बिना तो यह जाना ही नहीं जा सकता कि कोई पूर्व जन्म था भी या नहीं और आगे हमारा कोई जन्म होगा भी या नहीं । प्रत्यक्षानुभूति के बिना मनुष्य नास्तिक बन जाता है । और इसी जन्म को सुख-दुख का कारण समझकर स्वार्थपरायणता में लग जाया करता है। वह दूसरे के दुःखों को नहीं देखता । उसका सिद्धान्त बन जाता है:

'यावज्जीवेदत्सुखंजीवेत्
ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य
पुनरागमनं कुतः ॥'

अर्थात् उनका यह सिद्धान्त बन जाता है कि मनुष्य जब तक जीवे सुखपूर्वक जीवे: कर्जा उठाकर घी पीवे । शरीर जलकर भस्म हो जायेगा फिर पुनर्जन्म क्या चीज था ।

अतः योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा पूर्व जन्म के संस्कारों का साक्षात्कार किया जा सकता है । मैं अपने सभी पाठकों के हितार्थ एक उदाहरण इस प्रकार लिखा देना उचित समझता हूँ जिससे प्रत्येक साधक यह समझ जाय कि पुराने जमाने के जैगिषव्य आदि ऋषि इतिहास के पुराने उदाहरण तो हैं ही किन्तु इस कलिकाल के जमाने में भी इस प्रकार के योगिराज महापुरुष हैं जिनकी करुणा-कृपा को पाकर मनुष्य भूत-भविष्य का ज्ञाता बन जाता है और वह अपने पूर्व जाति के संस्कारों का साक्षात्कार कर लेता है । इस विषय में मुझे अपने सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी की अनेकों अनुकम्पाओं का स्मरण हो रहा है।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी का एक उदाहरण :

एक समय मेरे गुरुभाई श्री गोपालनन्दजी महाराज अपने योग साधन आश्रम ऋषिकेश

के कुऐं पर जल खींच रहे थे । अकस्मात् उनके हाथ से कुऐं पर लगी हुए चरखी की खूँटी छूट गयी एवं उसमें लगी हुई कील से उनका हाथ काफी फट गया । उनके फटे हुए हाथ को देखकर वहाँ पर लोगों ने काफी आश्चर्य माना कि ऐसा क्यों हुआ । श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की महती कृपा से जितने भी वहाँ गुरूभाई-बहन थे वे सब अच्छे ध्यान योग के अभ्यासी थे। उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारबिन्दों में प्रश्न किया कि हे प्रभो ! भाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्दजी उत्कृष्ट-ध्यानी हैं और विवेक ख्याति की ओर तीव्रतम् गति से बढ़ रहे हैं और फिर इतनी उत्कृष्ट स्थिति में भी यह घोर दण्ड क्यों मिला, कृपा कर बतलाइये । श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि भाई हम क्या बतलायें? तुम सब ऊँचे-ऊँचे ध्यान योग के अभ्यासी हो अपने अभ्यास में बैठकर के इसके संस्कारों का साक्षात्कार करो, पूर्व जाति का ज्ञान करो और देखो उस जन्म में इसके संस्कार क्या थे और कौन से कठिन कर्म-विपाक के फलस्वरूप इसे यह दण्ड मिला है। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार वहाँ पर जितने अच्छे बड़े-बड़े ध्यानी लोग थे वे सब के सब अभ्यास में बैठ गये और अभ्यास में बैठकर ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी के पूर्व जन्म के जाति की छान-बीन करने लगे । शनैः शनैः उन लोगों ने जाना कि ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी इस जन्म से पहले जन्म में एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे और मथुरा में यह गऊघाट पर रहते थे। इनकी स्त्री रूप-गुणवती सुन्दर युवती थी । इनके मन में प्रतिक्षण यह भ्रान्ति रहती थी कि यह अपने रूप और यौवन के मद में कहीं कुमार्गगामिनी न हो जाय। यह अपने यजमानों के घर में कथायें कहने के लिए जाया करते थे । एक दिन जब कहीं सत्यनारायण की कथा कहने के लिए गये तो अपनी पत्नी को समझा गये कि तुम गऊ की कुट्टी काट कर चारा डाल देना जिससे गऊ भूखी न रहे किन्तु वह स्त्री गृहकार्यों की व्यस्तता के कारण गऊ की कुटी काट कर चारा न डाल सकी। परिणामस्वरूप जिस समय यह लौटकर घर आये तो अपनी स्त्री से पूछा कि क्या तुमने अब तक कुट्टी काट करके गऊ को चारा नहीं डाला ? तो उसने उत्तर दिया-स्वामिन् ! मैं घर के कार्यों में व्यस्त थी अब आपकी आज्ञानुसार अभी कुट्टी काट कर गऊ को चारा डाले देती हूँ। किन्तु विप्रदेव के मन में बड़ी शंकायें थीं । वह अपनी रूप शीलवती स्त्री को व्यभिचारिणी समझते थे । यथार्थ में वह वैसी नहीं थी किन्तु इन्होंने क्रोधवश होकर कहा कि तुमने गऊ की कुट्टी काटकर चारा नहीं खिलाया तो क्यों न मैं तुम्हारी ही ऐसी दशा कर दूँ कि तुम कभी-भी कुट्टी न काट सको । यह कहकर उन्होंने

अपनी स्त्री के हाथ को गँडासे से काट दिया। परिणामस्वरूप उसका हाथ कटकर कुये में गिर गया जिसके फलस्वरूप वह तड़फ करके मर गई। उसी पाप कृति के फलस्वरूप आज ब्रह्मचारीजी का हाथ कटकर कुएँ में गिरना था और इनकी मृत्यु होनी थी किन्तु ये विवेकख्याति की ओर हैं, इसलिए इनके हाथ में केवल चोट आ गई है, कुछ दिन दुःख रहेगा और फिर ठीक हो जायेगा और वैसे ही हुआ भी। हमारे गुरूभाइयों ने मथुरा में जाकर वहाँ ब्रह्मचारी गोपालानन्द के पूर्व जन्म के स्थान को ढूढाँ । गऊघाट के वासी लोगों ने बतलाया कि हाँ ! उनके मुहल्ले में कोई रामनारायण पाण्डेय नाम के पण्डित रहते थे और उन्होंने अपनी स्त्री का हाथ काट दिया था जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी । किन्तु बात बहुत पुरानी है, उनका वह मकान बिक चुका है, कुआँ बर्बाद हो चुका है। उनकी स्मृति का अब कोई चिन्ह अवशेष नही है। यह था योग के द्वारा संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त करना । जिस प्रकार मनुष्य संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जानि का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकर मनुष्य समाधि के अभ्यास में जिस समय कि उसको विवेक ज्ञान प्राप्त होता है, जिस समय वह अपने संयमी चित्त को परचित्त ज्ञानादि में सयमित करता है तो उसको तत्काल ही परचित्त ज्ञान हो जाया करता है । भगवान पतंजलि देव ने इसी विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है-

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।

अर्थात् पर पुरूष की वृत्ति में जिस समय योगी संयम करता है तो योगी को उसे चित्त का ज्ञान हो जाया करता है, किन्तु उसका चित्त किस स्थिति में है, यह ज्ञान होता है। चित्त कहाँ अनुरागी है, इसका ज्ञान नहीं होता क्योंकि चित्त का 'अनुराग' उसके संयम का विषय नहीं है । इसी बात को स्पष्ट करके भगवान् पतंजलिदेव कहते है।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वाद् ।

क्योंकि योगी के संयमों चित्त ने उसके अनुराग को अपने संयम का विषय नहीं बनाया। प्रत्ययमात्र को अपने संयम का विषय बनाया है । इसलिए योगी को चितिमात्र से परचित का ज्ञान होता है । यदि योगी उसके अनुरक्त चित्त को अपने संयम का आधार बनाये तो उसके चित्त के अनुरागी धर्मों का साक्षात्कार भी कर सकता है और यह जान सकता है कि अमुक व्यक्ति का चित्त कहाँ अनुरागवाला है और उसके चित्त का विषय काम है, क्रोध है, लोभ है या मोह है। इस प्रकार योगी परिचत्त को अपने संयम का विषय बनाकर परचित्त ज्ञानादि भली प्रकार प्राप्त कर सकता है । आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अपने मन को धारणा-ध्यान समाधि के बल से संयमित बनाये।

सम्पादकीय-

योगेश्वर सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का

125 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

❋❋ योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज ❋❋

❋❋❋❋❋◆◆❋❋❋❋❋◆◆❋❋❋❋❋

कभी-कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरूष अवतरण करते हैं तथा भगवान के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधाना के पथ पर लगाकार मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरूष हरियाणा प्रान्त के एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों-युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ । अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना । अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था । नेपाल में 'गण्ड़की नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम" में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारणा किया । शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल-लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर पिताश्री ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा । ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरूष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये । पिताजी स्वंय अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरूष थे । इन्हें वे ४-५ वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे । प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी । तत्पश्चात् हरयिाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे । अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब के लाहौर में आचार्य विश्व-बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी

धर्मात्मा महापुरुष थे । यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे । अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं । विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे । भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे । अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे । किन्तु अर्न्तयामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया । एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव' ! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो । यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है । अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो । अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे । साधकों में अद्भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं । ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगीं । गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रूचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे । योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे । वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं । जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया । ऊर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है । ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता । मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती । उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है । सद्गुरू चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है। जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाती है । उसे अब सब कुछ मिल गया । 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी दान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब १८-२० वर्ष के ही थे

उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी । अगढ़धत्ता के प्रसंग में आपने स्वंय ही इस तथ्य का उद्घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरूदेव से एक बार कहा था- तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् १९३८ में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरूदेव जी श्री सिद्धगुफा संवाई धाम के दर्शनों के लिए आये । नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये । स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया । साधकों का शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षट्कर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं को अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरूदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे ।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारित तरीके से आकर लेते । इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरूदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरू भक्ति के फलस्वरूप वाक्सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियों प्रकाशित होने लगीं । इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधनारत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग-खिलमर्ग की तरफ गुरूदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था । एक बार वाराणसी के गुरूभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरूदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है । उस साधु ने कहा- मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ । उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ । वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्गद् कण्ठ से गुरूदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया ।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की । वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणयम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर निरोग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरूदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे । आज भी वही परम्परा चल रही है । 'सन्तु सन्तु निरामयाः की भावना को गुरूदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही हैं। १९९६ में भी विश्व योग सम्मेलन से आप साधना-सत्र के अध्यक्ष थे। आप क्षेत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिन्द्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट-कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढ़ंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उदेश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे-यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ भी नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।'

इस प्रकार से गुरूदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरूम् गुरू कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरूदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों की अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्ध होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो आपके जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म-साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरूदेव के लाखों शिष्य-प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

करूणामूर्ति श्री गुरूदेव का १२५ वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों में विजयादशमी के दिन बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस परम पावन बेला पर गुरूदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

" श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद् भागवत् में योग परिचर्चा

डा. विजय सिंह

श्रीमद्भागवत् के अंतिम बारहवें स्कन्ध में, अन्तिम तेरहवें अध्याय में सूत जी ने शौनकादि कवियों को विभिन्न पुराणों की श्लोक, संख्या और श्रीमद्भगवत की महिमा बतलायें हैं ।

सूतजी कहते हैं-ब्रह्मा, वरूण, इन्द्र, रूद्र और मरूद्गण दिव्य वस्तुनियों के द्वारा जिनके गुणगान में लगे रहते हैं । ऋषि-मुनि उपनिष्दों के सहित वेदों द्वारा गान करते रहते हैं। योगीजन ध्यान के द्वारा निश्चक मन से जिनका दर्शन प्राप्त करते रहते हैं परन्तु कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूप को पूर्णतया न जान सका, स्वंयप्रकाश परमात्मा को नमस्कार है ।

यं ब्रह्मा वरूणेन्द्ररूद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तैव-
वैदैः साऽपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततगतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ 1.13.12

शौनक जी ! ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक, पद्मपुराण में पचपन हजार, श्री विष्णु पुराण में तेईस हजार और शिवपुराण की श्लोक संख्या चौबीस हजार है । श्रीमद् भागवत में अठारह हजार, नारदपुराण में पचीस हजार, मार्कण्डेयपुराण में नौ हजार तथा अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार श्लोक हैं । भविष्य पुराण की श्लोक-संख्या चौदह हजार पाँच सौ और बृह्मवै वर्तपुराण की अठारह हजार तथा लिंग पुराण मै ग्यारह हजार श्लोक हैं । वराह पुराण में चौबीस हजार, स्कन्द पुराण की इक्यासी हजार एक सौ और वामन पुराण की श्लोक संख्या दस हजार है । कर्मपुराण सत्रह हजार और मत्स्यपुराण चौदह हजार में उन्नीस हजार, गरूड़पुराण में उन्नीस हजार तथा ब्रह्माण्ड पुराण में श्लोक की संख्या बारह हजार है।

शौनक जी । जैसा पहले कहा गया है कि भयभीत ब्रह्मा पर परमकरूणा का के भगवान विष्णु ने भागवतपुराण को प्रकाशित किया। समस्त उपनिषदों का सार है ब्रह्म और आत्मा का एकत्वरूप, यही श्रीमद् भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माण का प्रयोजन एक मात्र कैवल्य-मोक्ष है

सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रजोनम् ॥ 12.12.12

यह श्रीमद्भागवत् समस्त उपनिषदों का सार है। जो इस सुधारस का पान कर तृप्त हो गया, वह अन्य पुराणों में रम नहीं सकती। इस पुराण में जीवनमुक्त परमहंसो के अद्वितीय ज्ञान का ज्ञान किया गया है।

इस सबसे पहले स्वंय भगवान नारायण ने ब्रह्मा जी के लिये प्रकट किया था । ब्रह्मा जी ने इसे नारद को उपदेश किया। नारद जी ने भगवान वेदवास जी को सुनाया। तदन्तर व्यासरूप से योगीन्द्र शुकदेवजी के और श्री शुकदेव जी ने करूणावश राजर्षि परीक्षित को उपदेश किया हम सभी उन्हीं मायामक्त रहित परम सत्यस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं।

योगीन्द्राय तदात्मजाय भगवद्रातय कारूण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं पर धीमहि ॥ 19.13.12

साथ ही हम उन योगीराज ब्रह्मस्वरूप श्री शुकदेवती को भी नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद् भागवतमहापुराण सुनाकर संसार सर्फ से डसे हुये राजर्षि परीक्षित को मुक्त किया।

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातमम्मुचत् ॥ 21.13.12

श्रीभागवतपुराण इस निष्कर्ष के साथ सम्पूर्ण होता है कि हे प्रभो ऐसी कृपा कीजिये कि बार-बार जन्म ग्रहण करतें रहने पर भी आपके चरण कमलों में अविचक भक्ति बनी रहे। भगवान के नाम संकीर्तन सर्व पापहारी है और आत्मसर्मपण सब प्रकार के दुःखों को शान्त कर देती है, उन्हीं परमात्मतत्व श्री हरि को नमस्कार करता हूँ।

नामसंकीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम ॥ 23.13.12

आगे चार अध्यायों में सूतजी ने श्रीमद्भागवतमहात्म्य का वर्णन किया है। सार संक्षेप में परीक्षित महाभारत समाप्त होने पर पाण्डवों के हिमालय गमन के पश्चात एक दिन मथुरा वज्रनाम से मिलने गये। वज्रनाम ने हार्दिक स्वागत किया। परीक्षित जी ने कहा वज्रनाम तुम्हारे मन में कोई क्लेश या चिन्ता हो मुझे बताओ। मैं तुम्हारी चिन्तायें दूर कर दूँगा। वज्रनाम ने कहा-तात ! यद्यपि मैं मथुरा मण्डल का राजा हूँ परन्तु मैं यहाँ निर्जन वन में रहता हूँ । यहाँ की प्रजा कहाँ चली गयी व्रजनाम के सन्देह को मिटाने हेतु महर्षि शाण्डिल्य को परीक्षित जी ने बुलवाया। राजा परीक्षित ने वज्रनाम की बात उन्हें कह सुनायी।

शाडिल्य जी ने कहा- व्रज! शब्द का अर्थ है व्याप्ति ! वह परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है । जीवन मुक्त पुरूष उसी में स्थित हैं । इस व्रज में भगवान कृष्ण का निवास है। वे आत्माराम और आप्रकाम है । प्रेमी ही उनका अनुभव करते हैं । अभी जो अवतार हुआ

था उसमें भगवान ने अपने सभी प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं। उनके साथ तीन श्रेणी के भक्त थे। पहले अन्तरंग पार्षद, जिनका भगवान से कभी विद्रोह होता ही नहीं । दूसरे वे जो एकमात्र उनकी अन्तरंग लीला में प्रवेश चाहते हैं। तीसरे देवता आदि हैं। उन्हें भगवान ने ब्रजभूमि से हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिये थे। यदुकुल में अवतीर्ण देवताओं को ऋषि शाप को निमित्त बनाकर अन्ततः स्वर्ग भेज दिया ।

वज्रनाभ ! तुम इस ब्रजभूमि का सेवन करते रहो, तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायेंगे। फिर तुम अपनी माताओं सहित उन्हीं से इस भूमिका तथा भगवान की लीला का रहस्य जान जाओगे।

ऋषियों ने पूछा-शाडिल्य मुनि जब अपने आश्रम लौट गये तब परीक्षित और वज्रनाभ ने कौन-कौन सा काम किया?

परीक्षित ने हस्तिनापुर से सामंतो और सेठों तथा ब्राह्मणों तथा प्राचीन वानरों को जो भगवान के प्रेमी थे उन्हें आदर पूर्वक मथुरा नगरी में वसाया था । भगवान ने गोपियों के साथ जहाँ नाना प्रकार की लीलायें किये थे उन स्थानों का नामकरण तथा कुण्ड और मन्दिर की स्थापना किया।

इधर श्रीकृष्ण की हजारों पत्नियाँ एक दिन यमुना जी से कहा-सखी ! उद्धव जी के दर्शन कब और कैसे होंगे । आप कोई उपाय करो जिससे उद्धव जी शीघ्र ही मिल जायँ।

यमुना जी ने कहा- जब भगवान अपने परमधाम को पधारने लगे, तब उन्होंने अपने मंत्री उद्धव से कहा-'उद्धव ! साधना करने की भूमि बदरिकाश्रम है या अपनी साधना पूर्ण करने के लिये तुम वहीं जाओ । उद्धव जी अपने साक्षातस्वरूप से बदरिकाश्रम में विराजमान है। भगवान का उत्सव उद्धव जी का अंग है, इसलिये तुम सब वज्रनाभ को लेकर कुसुमसरोवर के पास जाओं। वहाँ भक्तों की मण्डली एकत्र करकेसाज-बाजों के साथ भगवान के नाम और लीलाओं का गानोत्सव करो, तब निश्चय ही वहाँ उद्धव जी का दर्शन मिलेगा। वे ही तुम सबों को कृत-कृत्य बनायेंगे ।'

यमुनाजी के बताये विधि से विशाल संकीर्तन का आयोजन किया गया। तब उद्धव जी सबके सामने प्रकट हुये। उनके आगमन से सभी आनन्द के समुद्र में निमग्न हो गये। थोड़ी देर बाद जब चेतना दिव्य भाव से नीचे आयी तब तब उद्धव जी को भगवान श्रीकृष्ण जी के स्वरूप में उपस्थित देखा। सभी उनकी पूजा करने लगे ।

सूतजी ने कहा-उद्धव जी ने सभी का सत्कार किया और परीक्षित को हृदय से लगाकर कहा-राजन तुम जो कुछ कर रहे हो, सब तुम्हारे अनुरूप है । श्रीकृष्ण ने ही तुम्हें शरीर और

वैभव प्रदान किया है । इस अवतार में भगवान श्रीकृष्ण ने इन सबको अपनी योगमाया से ढ़क दिया है, उसीके प्रभाव से ये अपने स्वरूप को भूल गये हैं और दुःखी हैं ।

अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायाति भाविताः ।
तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्येते न संशयः ॥ 8.3.

अब पुनः श्रीकृष्ण तत्व के प्रकाश की प्राप्ति के लिये श्रीमद् भागवत ही एक मात्र उपाय है। पूर्वकाल में सांख्यायन की कृपा से श्रीमद्भागवत वृहस्पति जी को मिला और वृहस्पति जी ने मुझे दिया, इसी से मैं श्रीकृष्ण जी का प्रियतम सखा हो सका हूँ । परीक्षित ! जब भगवान के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी ने भगवान से कहा-परमात्मन ! आदि पुरूष नारायण आपका मेरा नमस्कार है। प्रभो ! आपने मुझे सृष्टि कर्म में लगाया है, रजोगुण आपकी स्मृति में कहीं बाधा न डालने लग जाय। तब भगवान ने उन्हें श्रीमद् भागवत का उपदेश देकर कहा- ब्रह्मा । तुम अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये सदा ही इसका सेवन करते रहना। इसी प्रकार विष्णु और रूद्र को भी गुणों के प्रभाव से मुक्त रहने के लिये श्रीमद्भागवत का उपदेश भगवान् नारायण ने किया था ।

सूत जी ने कहा- ऋषिगण ! श्रीभागवत् और श्री भगवान्का स्वरूप सदा ही है, वह है सच्चिदानन्दमय। जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति को प्रकाशित करने वाला है, जो माया का मर्दन करने में समर्थ है, उसे भी श्रीभागवत् समझो । पूर्वकाल में भगवान ने ब्रह्मा जी को चार श्लोकों में मात्र उपदेशित किया था। उसे ही मनुष्य के हित साधन के लिये श्री व्यासजी ने परीक्षित और शुकदेवजी के संवाद रूप में अठारह हजार श्लोकों में गान किया है। कलिरूपी ग्राह से ग्रस्त प्राणियों के लिये श्रीमद्भागवत ही सहारा है।

आगे सूतजी ने श्रोताओं और कथा वक्ताओं के गुण बताये हैं तथा भागवत् का आयोजन, संकीर्तन आदि की व्यवस्था का वर्णन किया है। यह सब निष्काम भाव से सम्पादित होना चाहिये। श्री शुकदेव जी के मुख से कहा हुआ यह श्रीमद्भागवत शास्त्र तो कलियुग में साक्षात् श्रीकृष्ण की प्राणी कराने वाला और नित्य प्रेमानन्दरूप फल प्रदान करने वाला है ।

कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम् ।
श्रीमद् भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ 48.4.

" श्री रामलाल प्रभवे नमः"

परब्रह्म तत्व क्या है

✲✲ जगदीश राय बंसल "अधम" ✲✲

श्री प्रयागराज महाकुम्भ पर्व के चलते एक अवसर पर अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने लाड़लों एवं भक्त समुदाय के उत्थान हेतु श्री मुख से योगवर्षा करते हुए पुलकित किया कि देखा लल्ला-सनातन धर्म के वन्दनीय शास्त्र एवं पुराणों में हमारे पूज्य देवी-देवताओं की अनेकानेक रोचक कथाऐं पढ़ने व सुनने के पश्चात हमारे मन में तरह-तरह के प्रश्न उछलने लग जाते हैं। जैसे शिवपुराण में भगवान भोले शंकर सर्वो-सर्वा हैं। श्री भागवत महापुराण में अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्णजी महाराज सर्वोच्च हैं। और श्री रामचरित मानस पुराण में भगवान पुरुषोत्तम श्री राम उच्चतम हैं.....आदि। इनमें से हम किसको क्या मानें, किसको क्या नहीं मानें? यह भी जानने में आता है कि हम जिस जिस देवी-देवता की पूजा करते हैं। देखोः- सर्वप्रथम श्रीरामचरित मानस का एक प्रसंग याद करते हैं। जिस समय जटाधारी भगवान शंकरजी कैलाश पर्वत पर रघुनन्दन श्री राम नाम में आनन्दविभोर हो रहे थे, उस समय माता सतीजी ने योगेन्द्रधारी भगवान शंकर जी से पूछा कि हे नाथ आप किसका जाप ध्यान करते हैं? आप तो सिद्धेश्वर हैं। तब योगानिधि भगवान शिव ने प्रत्युतर में कहा कि-हे प्रिये ! मैं अपने ईष्ट देव भगवान राम का जाप करता हूँ । चलिए, मैं तुम्हें उनके दर्शन करवाता हूँ। उन दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि ने रघुवंश में अयोध्या अवतार लिया था । अविनाशी पितु भक्त भगवान राम अपने पिता चक्रवर्ती सम्राट-कौशल्यावीश दशरथ जी महाराज के वचन से राज्य का त्याग करके तपस्वी या साधूवेश में चौदह वर्ष के दण्डकारण्य मे थे । भगवान भोले नाथ ने अपने आराध्य श्रीराम को सादर प्रणाम किया और लौटने लगे । कृपा निधान शिवजी बार-बार आनन्द से पुलकित होते हुए शोभा के समुन्द्र श्री राम जी को बार-बार नेत्र भरके देखते-देखते सतीजी के साथ चले जा रहे थे। मगर शंकर बाबा की यह दशा देखकर सतीजी के मन में बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया । मन ही मन सोचने लगी कि शंकर जी को सारा जगत वन्दन करता है, ब्रह्मा, विष्णु आदि सब स्तुती करते हैं फिर इन राजकुमार से दिखने वाले, वन वन भटकने वाले, लता-वृक्षों..... से अपनी पत्नी सीता को पूछने वाले किस प्रकार मेरे सर्व समर्थ, सर्वज्ञ स्वामी महा-देव के इष्ट हो सकते हैं? कदापि नहीं.....।

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजनमा, अगोचर, इच्छा रहित और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है? विष्णु भगवान जो कि ज्ञान के भण्डार हैं, क्या वे अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे.....? इत्यादि। नहीं, कदापि नहीं। यद्यपि भोले बाबा ने सती जी को भाव को जानकर, उसे बार-बार समझाया कि से पूर्णब्रह्म हैं.....। मगर सती जी के हृदय में यह उपदेश नहीं बैठा, तब महादेव जी भगवान की माया का बल जानकर मुस्कराते हुए बोले-जो तुम्हारे मन में सन्देह है तो जा कर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती? शिवजी की आज्ञा पाकर सतीजी अपने अरमान से रामजी की परीक्षा लेने चली। सती जी मन में सोचने लगी क्या करूँ? कैसे परीक्षा लूँ? सती जी बार-बार विचार कर सीता जी का रूप धारणा करके भगवान राम के मार्ग में बैठ गई। इधर शिव जी ने अनुमान किया कि दक्ष कन्या सती का कल्याण नहीं है जो मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नहीं हुआ। अब वही होगा जो राम ने रच रखा है।

सती जी के बनावटी वेष को देखकर घटघट वासी सर्वज्ञ श्रीराम भगवानजी सती के कपट को जान गए और अन्तर्यामी श्रीराम ने हँसकर करबद्ध से माता सती जी को सादर प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर बोले, माता श्री आप यहाँ अकेली कैसे विराजी हैं? देवाधि देव को कहाँ छोड़ आई हैं? सती जी को यह सुनकर बड़ा संकोच हुआ और डरती हुई- संकुचाती हुई पश्चाताप के विरह में चुपचाप वापिस चली आई। उसके हृदय में बड़ी चिन्ता थी कि मैंने स्वामी (शंकर जी) का कहना न माना, अब जाकर क्या उत्तर दूंगी? श्रीराम जी ने जान लिया कि माता सती को भारी व्याकुलता है अतः उन्होंने अपने प्रभाव से सती को दिखाया कि राम-लक्ष्मण सीता सुन्दर वेष में विराजमान हैं। सिद्ध मुनिश्वर उनकी सेवा कर रहे है। सतीजी ने अनेक शिव-ब्रह्मा और विष्णु भाँति-भाँति के वेश धारण किए देवों सहित श्री रामजी की चरण वन्दना कर रहे हैं इत्यादि.....।

उधर सर्व समर्थ्य भोले नाथ ने सती द्वारा किया सब जान लिया। सतीजी श्री राम को प्रणाम कर शिव भगवान के पूछने पर बोली- हे स्वामी ! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली और आपकी तरह उन्हें प्रणाम करके लौट आई। आपकी बात झूट नहीं हो सकती.....। आगे की कथा तो लम्बी है, सभी जानते हैं कि किस प्रकार लज्जित सती जी ने अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर लिया था, अस्तु।

अब इस रामायण पुराण में ही इस प्रसंग का विपरीत पहलू देखिए कि लंका पति रावण द्वारा सीता माता के अपहरण पश्चात भगवान रामलीला करते हुए व्याकुल हो गए तो महर्षि अगस्त्य से अपने दुख का निवारण पूछा। महर्षि ने कहाकि तुम यहाँ रहकर भक्त

वत्सल भगवान शिव की अराधना करो। वे आशुतोष हैं, अवश्य प्रसन्न हो जाएंगे। महर्षि की आज्ञा पा कर पुरूषोत्तम रामजी ने पंचाक्षरी मन्त्र " नमः शिवाय" का घोर तप किया। छः माह पश्चात करूणासागर भगवान शिव प्रकट हुए और उन्होंने श्रीराम को पशुपत अस्त्र देते हुए रावण वध का आशीर्वाद दिया।

इसी रामायण महापुराण में एक और प्रसंग है कि जब श्रीराम जी लंका जाने के लिए समन्द्र पर सेतु निर्माण करने जा रहे थे तब उस समय श्रीराम जी ने त्रयंबक महादेव पूजा अर्चना के लिए शिवलिंग की स्थापना की जो रामेश्वरम् धाम के नाम से विश्व विख्यात है। शिवलिंग स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया और बोले कि शिव जी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नही है। जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह स्वप्न में भी मुझे नही पाता हैं। परिणामतः हम देखते हैं कि एक तरफ भगवान शिव अपने आराध्य श्रीराम की उपासना करते हैं, वहीं दूसरी तरफ भगवान श्रीराम अपने आराध्य शिवजी की उपासना करते हैं। अतः दोनों का प्रसंग सुन कर कौन क्या निर्णय ले सकता है?

आईए ! अब ब्रज धाम की रज को शिरोधार्य कर श्रीमदभागवत पुराण में भगवान कृष्णावतार का वर्णन करते हैं। जब भगवान कृष्ण का अवतार हुआ तो कैलाश पर्वत से भगवान शिव उनके दर्शन श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन आए। भगवान शंकर योगीश्वर हैं और भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर। प्रत्येक में ब्रम्हा के दर्शन करने वाला संत दुर्लभ है। मगर माता यशोदा ने लल्ला के दर्शन से साफ मना कर दिया कि मेरा लल्ला नाग देख कर डर जाएगा और कुदृष्टि भी लग जाएगी। शिव जी भगवान ने कहा तेरा लल्ला काल का काल, ब्रम्हा को ब्रम्हा है, इत्यादि बहुत हठ किया तब कहीं बड़ी मुश्किल से दर्श मिला। इस अद्भूत प्रेम मिलन से लगता है कि भगवानशिव, भगवान कृष्ण के महान उपासक हैं।

इसी भागवत महापुराण में आगे चलकर एक और प्रसंग मिलता है कि काल-चक्र, युग-चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण जो स्वंय आनन्दस्वरूप हैं, गोपियों को आनन्ददान करने के लिए श्री वृन्दावन में सरद पूर्णिमा की चन्द्र चमकती रात्री में रासलीला का आयोजन किया। इस रास लीला में ऋषियों ने भी अपना चोला उतारकर गोपियों का रूप धारण कर लिया कि शरीर की शोभा वस्त्राभूषणों से नहीं, भक्ति से होती है। देव गन्धर्व-नारद आदि ने भी आकाश से इस लीला को निहारा। गोपिया प्यारे कृष्ण की वंशी धुन सुनकर जो जिस हालात में थी दौड़-दौड़ आयी भगवान के तेजस परमाणुओं के प्रवाह गोपियों में समाने से गोपियों को स्वतः लगा कि हम पहले कृष्णोऽहमं थी

अब दासोअहमं हो गई। यह लीला स्थल केवल गोपियों के लिए था अर्थात् पुरूष प्रवेश निषेध था अतः उस समय भोलेशंकर बाबा भी गोपी का रूप धारण कर रासलीला का आनन्द लूटने पधारे । इसी उपलक्ष्य में वृन्दावन धाम में श्री गोपेश्वर महादेव के नाम से दिव्य मन्दिर विख्यात है। यह लीला निधि वन के नाम से विश्व विख्यात है, जहाँ आज भी रात्रि बेल में नियमित रास लीला होने के प्रमाण चिन्ह पाए जाते है।

अब इसी प्रसंग का विपरीत पहलू इस प्रकार है कि एक समय श्री मार्कण्डेय ऋषि जी भगवान श्री कृष्ण के पास गए । उस समय भगवान शिव अराधना में व्यस्त थे । ऋषि मार्कण्डेय जी आश्चर्य में पड गये कि त्रिलोकी पावन नारायण स्वंय किसकी आराधन कर रहे है? अन्ततः अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए ऋषि जी ने प्रभु जी से पूछ ही लिया । प्रत्युतर में भगवान ने कहा-शिव भगवान मेरे आराध्य हैं, मैं उन्हीं की पूजा अराधना कर रहा था ।

इसी पहलू के समर्थन में एक और प्रसंग मिलता है कि भगवान श्रीकृष्ण उपमन्यु ऋषि की आज्ञा से पुत्र कामना के लिए बारह वर्ष तक हिमवान पर्वत पर शिव भगवान की अराधना करते रहे । परिणामतः शिव कृपा से उन्हें पुत्र रत्न प्रद्युम्न की प्राप्ती हुई । यहाँ पर यह समझना कठिन है कि भगवान शिव और भगवान कृष्ण में कौन किसका आराध्य है? अस्तु ।

इस प्रकार की सभी समस्याओं के चलते अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर अनन्त गुरूदेव श्री चन्द्रमाहन जी महाराज ने साधकों के सम्बोधन में श्रीमुख से बतलाया कि देखो लल्ला -इन प्रकरणों में परस्पर विरोध अवश्य प्रतीत होता है, मगर एक बात यह भी है कि:- योगाधीश भगवान श्रीकृष्ण ने धर्मक्षेत्र-कुरूक्षेत्र के मैदान में दोनों सैनाओं के मध्य महात्मा अर्जुन को गीता सुनाई। अर्जुन ने गीता सुन ली, किन्तु एक अन्तराल पश्चात भूल गए । फिर महाभारत युद्ध जीतने के पश्चात् एक दिन अर्जुन ने कहा कि हे मधूसूदन । आपने जो गीता युद्धक्षेत्र में सुनाई थी उसे मैं पुनः सुनना चाहता हूँ। कृपा करके सुना दीजिए । श्रीकृष्ण भगवान कहले लगे, कि हे पार्थ ! मैं उसको फिर से उसी प्रकार नहीं कह सकता हूँ । उस समय तो वह परब्रह्म की वाणी थी । अस्तु ।

इस बात का अभिप्राय यह है कि परब्रह्म तत्व अथवा परमतत्व अथवा सद्गुरू तत्व कब-कहाँ और किसमें प्रकाशित होता है, इस रहस्य को हर साधक नहीं समझ सकता। देखो-जब भी श्रीराम अवतार अथवा श्रीकृष्ण अवतार हुआ, उस समय वे उस परम तत्व से विभूषित थे । जब तक इन्द्रिय धर्म प्रकट नहीं हुए, तब तक उस तत्व के दर्शन करने भगवान शिव गए व अन्य देवगण गए । पश्चात, जब श्रीराम, शिव भगवान की अराधना करने बैठे तब सद्गुरू तत्व के रूप में शिव भगवान जी राम पर कृपा करने गए । इसी प्रकार कृष्ण अवतार होते ही शिव भगवान...

दर्शन करने पधारे । सारांश यह है कि वह परब्रह्म तत्व-जिस समय-जिस रूप में-जहाँ होता है, उस समय सारे देवगण उसकी पूजा किया करते है। उसी तत्व के भय अग्नि जलती है, उसी के भय से सूर्य तपता है, उसी के भय से इन्द्र-यमराज आदि दौड़े-दौड़े फिरते है।

भक्त शिरोमणी दादा तुलसीदास जी कहते हैं कि वह तत्व बिना पैर के चल लेता है, बिना कान के सुन लेता है, बिना आँख के देख लेता है.....इत्यादि । वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा प्रकाशित होता हैए उस तत्व के प्रकाश से ही जग में सब कुछ प्रकाशित होता है।

नोट- इस तत्व मन्त्र (गुरूमन्त्र) का बराबर जप करने वाला गन्ध, रस, स्पर्श, रूप और शब्द पर विजय पा सकता हैं। और मन्त्र अध्यात्मिक उपासना करने वाले को बल पूर्वक मोक्ष तक पहुँचा देता है।

जय गुरू देव

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥ ॥ श्री चंद्रमोहन सद्गुरूदेव नमः ॥

तीन दिवसीय आध्यात्मिक योग सत्संग, नागपुर

आदरणीय समस्त गुरू भाई-बहिनों को सूचित करते हुये अपार हर्ष हो रहा है कि योग योगेश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज, श्री सद्गुरूदेव योगिराज अनन्त श्री विभूषित श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की असीम अनुकम्पा से तीन दिवसीय आध्यात्म यौगिक सत्संग एवं स्वास्थ्य शिविर का आयोजन परम श्रद्धेय तपोमूर्ति योगनिष्ठ योगाचार्य सद्गुरूदेव डॉ. दासलालजी महाराज, श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम के यौगिक संरक्षण में आयोजित किया जा रहा है।

अतः आप सभी से निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर अपने आत्मीयजनों एवं मित्रों के साथ इस पावन उत्सव में आकर योगसिद्धान्तों का श्रवण करें एवं सद्गुरू महिमा से अपने मन को पवित्र करते हुए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति का आत्मिक आनन्द का पुण्य लाभ लें।

यह आयोजन निःशुल्क एवं समस्त मानव कल्याण के लिये है।

दिनांक 08 नवम्बर 2024 से 10 नवम्बर 2024 तक

कार्यक्रम स्थल :

श्री हनुमान मन्दिर सांस्कृतिक भवन

अंबझरी धर्मशाला, श्री महावीर (हनुमान) मन्दिर परिसर, भक्तिधाम आजाद चौक, सदर, नागपुर-४४०००१ (रिलायन्स फैशन फैक्ट्री के समीप)

॥ निवेदक ॥ सिद्धयोग साधक मण्डल, नागपुर

सम्पर्क सूत्र : 9823666950, 9834932257, 9423078112

नोट :- रेल द्वारा आने वाले गुरू भाई-बहिनों से निवेदन है कि नागपुर रेलवे स्टेशन के प्लेट फार्म नं० १ की तरफ से प्री-पेड आटोबूथ पर आकर ऊपर लिखे कार्यक्रम स्थल पर आने की कृपा करें ।

" श्री रामलाल प्रभवे नमः"

आत्म साक्षात्कार

श्री अन्तूराम यादव

प्रातः स्मरणीय हमारे आप के प्राण धन सर्वशक्तिमान सब समर्थ अन्तर्यामी आनन्दकन्द योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरूदेव एवं श्री सद्गुरूदेव भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन । सीभी भाई-बहनों की बारम्बार सादर जयगुरूदेव । गुरूगीता, गुरूभक्ति का ऐसा अनूठाग्रंथ है। जिसकी तुलना में अन्य ग्रंथ बहुत पीछे छूट जाते हैं । हर गुरू भक्त के हृदय में सद्गुरू के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, इसी आशय से गुरूगीता का थोड़ा सा अंश प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

गुरूगीता बोधिवृक्ष है। इसकी छाँव तले होने वाली सद्गुरू कृपा की अनुभूति साधक को सम्यक् बुद्धि प्रदान करती है। परमगुरू देवाधि देव महादेव कहते हैं कि गुरूतत्व के प्रति जिज्ञासा रखने वाले साधकों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि गुरू के अभाव में समस्त शास्त्र एवं सारी विद्याएँ अर्थहीन हो जाती है। भगवान शिव के ये वचन बड़े अनूठे हैं । इनको आत्मसात् करने के लिए गहन श्रद्धा एवं प्रखर विवेक की जरूरत है । सद्गुरू कृपा करके जब यह बोध करा देते हैं कि समस्त शास्त्र सारगर्भित हैं और सारी विद्याऐं अर्थवान् हैं । सद्गुरू के न होने पर शास्त्र केवल वाक्जाल बनकर रह जाते हैं । गुरू के सानिध्य के अभाव में कल्याणकारी विद्याऐं भी अकल्याणकारी बन जाती हैं । यह अनुभव सिद्ध सत्य हैं, जिसे अनेकों ने अनुभव किया हैं ।

सद्गुरू प्राप्ति की अभीप्सा के संकल्प हैं भगवान सदाशिव गूढ़ विद्या इस लिए कहते है क्योंकि गुरूतत्व साधारणतया किसी की समझ में नहीं आता। कामनाओं और वासनाओं के अँधेरे से घिरे लोग "गुरू" शब्द का महत्व ही नहीं समझ पाते। गुरू वह तत्व है, जो अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करके ज्ञान रूपी तेज का प्रकाश करता है । ऐसे सद्गुरू के लिए लगन, उनको पाने की गहरी चाहत, उनके चरणों में अपने सर्वस्व समर्पण के लिए आतुरता में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। यद्यपि यह कार्य आसान नहीं है। आसान न होने पर पहला कारण है-माया का आवरण। इस दुनिया में प्रायः सभी लोग इसी माया के कारण तेरा-मेरा करने में लगे हुए हैं। गुरू-प्राप्ति की लगन में अगली बाधा है-शरीर । यहाँ शरीर का अर्थ केवल देह मात्र नहीं है बल्कि इसके अर्थ में दैहिक कष्ट एवं दैहिक वासना भी शामिल है। इन बाधाओं और अवरोधो को हटाकर जो सद्गुरू की प्राप्ति के लिए संकल्पित होते हैं, वे धन्य हैं, वे कृतार्थ और कृतकृत्य हैं।

गुरू गीता में एक श्लोक आता है-

"गुरुर्ब्रुह्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं न संशयः ।
तत्लाभार्थ प्रयत्नस्तु कर्तव्यो हि मनीषिभिः ।।"

परमगुरू कहते हैं, हे देवी ! प्रबुद्ध आत्मा यानी जागृत आत्मा एवं सद्गुरू एक ही हैं, भिन्न नहीं हैं। यह सत्य है, सत्य है, इनमें तनिक भी संशय नहीं है। परन्तु इस गूढ़ रहस्य को वही समझ पाता है जो मनन शील मनीषी है। इस कथन में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला शब्द "मनीषी" है। मनीषी सब नहीं होते । ये बड़े ही विशेष प्रकार साधना परायण व्यक्ति होते हैं। इनका विश्वास जीवन की यांत्रिक गतिविधियों में फंसकर सब कुछ गवाँ देने में नही होता । इनकी अन्तर्चेतना रोजी, रोटी कमाने तक सिमटी नहीं रहती । अपनी रोजमर्रा की गतिविधियों के साथ-साथ जीवन के सार तत्व के बारे में सतत् मनन करते रहते हैं ।

ऐसे मननशील मनीषियों को शीघ्र ही इस यथार्थता का अनुभव हो जाता है कि सद्गुरू की कृपा शक्ति से ही आत्म चेतना में जागृति आती है । जब आत्म चेतना आगृत हो जाती है, तब वह सत्य अनुभूति का रूप ले लेती है कि सद्गुरूदेव की कृपा चेतना ही अपनी आत्म चेतना है । इन दोनों में कोई भिन्नता नहीं है । इस लिए गहन अर्थ में सद्गुरू के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार ही "आत्म साक्षात्कार है ।" सद्गुरू की प्राप्ति ही आत्म-प्राप्ति है। मनुष्य जीवन का केन्द्रीय उद्देश्य एवं आधार भी यही है । परम गुरू महादेव, हम सब साधकों को आगाह करते हैं कि जो भी कर्तव्य कर्म किये जायँ, वे सभी इसी उद्देश्य एवं इसी अभीप्सा के साथ हों । यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप एवं तीर्थ इन सभी श्रेष्ठ कर्मो का अनुष्ठान करना चाहिए, परन्तु इन कर्मों के पवित्र अनुष्ठान के साथ सद्गुरू की प्राप्ति का संकल्प अवश्य ही जुड़ा होना चाहिए । इस संकल्प के जुडने मात्र से वे सभी कर्म श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम् होते चले जायेंगे । इनके अनुष्ठान में तत्पर व्यक्ति की अन्तर्चेना अज्ञानता से ज्ञानदाता सद्गुरू की ओर यात्रा कराने में सहायक हो सकेगी । जिन्हें पूर्ण सद्गुरू की प्राप्ति हो चुकी है वे बहुत ही भाग्यशाली है । उन्हें अपने भाग्य की बार-बार सराहना करनी चाहिए। जिनको सद्गुरू की चरण-शरण प्राप्त नहीं हुई है, उन्हें निराश नहीं होना चाहिए बल्कि धैर्य एवं दृढ़ संकल्प के साथ उस दिशा में सतत् प्रयास करते रहना चाहिए। जब सद्गुरू प्राप्ति की ज्वाला प्रयास-रत साधक के हृदय में पूर्ण रूप से धधक उठेगी तब किसी न किसी बहाने सद्गुरू स्वंय अपने पास बुला ही लेंगे। यह कोई कपोल-कल्पित बात नहीं है बल्कि अनेक जिज्ञासु साधकों की निजानुभूति है ।

सद्गुरू प्राप्ति के बाद शिष्य साधक बिल्कुल निश्चिन्त हो जाता है। सद्गुरू की आज्ञानुसार साधना करते-करते उसे अपने गुरूदेव के प्रति इतना आत्म-विश्वास हो जाता है कि जब सद्गुरू हमारे साथ हैं तो किसी भी हालत में हमारा अनिष्ट हो ही नहीं सकता। उसके लिए गोस्वामी तुलसीदास की निम्नांकित पंक्तियाँ पूर्णतया चरितार्थ होती हैं-

"तुलसी रामभरोसे चादर तान के सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी होय सो होय ।।"

जब शिष्य के हृदय में अपने सद्गुरू के प्रति पूर्ण श्रद्धा, विश्वास एवं समर्पण का भाव जागृत हो जाता है तब वह छाती ठोंक कर कहता है-

"अब जमाने का डर है ना दुनियाँ का गम।
अपनी तकदीर पर नाज करते हम ।।
आज आँखों को जलवे सद्गुरू के मिले।
और हाथों को दामन भी सद्गुरू को मिला ।।"

अपनी भूलों और त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

सादर जयगुरूदेव

सद्गुरूदेव भगवान का एक अकिंचन बालक

अन्तूराम यादव प्रयागराज

" श्री रामलाल प्रभवे नमः"

सत्संग का प्रभाव

❋❋ प्रेषक- कृष्ण कुमार पाण्डेय गोरणपुर ❋❋

व्यक्ति के जीवन में सत्संग का विशेष प्रभाव पड़ता है । तुलसीदास जी महाराज ने कहा- "सठसुधरहि सतसंगति पाई" । सत्संग पारस मणि के समान है। जीव संसार में आने से पूर्व मातृकुक्षि में परमात्मा से सत्संग करता है । वहाँ बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञायें करता है । ऐसा शास्त्रों का कथन है । किन्तु जैसे ही इस धराधाम पर आता है । तो शैशवास्था में कुछ दिन तो युग धर्म कर्मों से हसता तथा जब बुरे कर्मो को देखता तो रोता है । विभिन्न प्रकार की सामाजिक किंदन्तियां भी है। किन्तु हायरे कलियुग ज्योहि कुछ समझने लगता है, अपना अधिकार पूरी तरह से जमाकर चलता है । परमात्मा सदैव सत्संग बुद्धि की प्रवृत्ति नही बनाता है। लेख में ऐसे ही परमतपस्वी वीतरागी, योगी विप्र पृथु की कथा है जो पद्म पुराण में है। विप्रवर प्रेमयोनि में पड़े जीव के उद्धार का कारण बनें। जिनके सत्संग से प्रेतों का उद्धार हुआ। कथा भीष्म और ऋषि पुलत्स्य के वार्ता का प्रसंग है। भीष्म ने ऋषि से जिज्ञासा प्रकट की ब्रह्म किस कारण से जीव प्रेतयोनि को प्राप्त करता है । उसके मुक्ति का क्या उपाय शास्त्रों में बताया गया है। भीष्म के प्रश्नों को सुनकर ऋषि बोले-राजन इस विषय में विस्तार से तुम्हें बताता हूँ। प्रेतयोनि कुकर्मों का परिणाम है। लेकिन यदि जीव सत्पुरूषों के साथ वार्तालाप पुण्यतीर्थों में स्मरण कीर्तन को सुनकर छुटकारा पाया जा सकता है। भागवत में धुन्धकारी की कथा सबको विदित है। पुलत्स्य ने एक वीतरागी तपस्वी, कठिन, शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए, जीवन व्यतीत करने वाले विप्र पृथु के सत्संग से प्रेत के उद्धार की कथा को सुनाया । विप्रवर पृथु सुख और दुःख के द्वन्द से परे थे । एक बार वे परम योगाभ्यासी विप्र पुष्कर क्षेत्र स्नान करके गायत्री का जप करने के उपरान्त तीर्थी यात्रा पर निकल पडे । भयंकर जंगलों के कंटकाकीर्ण मार्गो से चले जा रहे थे । उस भयंकर जंगल में पाँच विचित्र पुरूषों को खड़े देखा। जो बडे विकराल कुरूप भूख प्यास से व्याकुल दिख रहे थे। उन सबको देखकर प्रियवर ने पूछा तुम कौन लोग हो जो इस भयंकर जंगल में कष्ट सह रहे हो। किस कर्मों से तुम्हें यह विकृत रूप प्राप्त हुआ प्रेतों ने कहा-हे भद्र हम भूख प्यास से बहुत व्याकुल है। हमें कुछ भी दिखता नही मात्र सूर्योदय का अभासकर प्रभात का प्रतीत करते हममें एक का नाम पर्युषित, दूसरा सूचीमुख तीसरा शीघ्रम चौथा रौंधक पाँचवा लेखक है। ब्रह्म से पूछा- तुम सब का नाम ऐसे कैसे पड़ा। प्रेतों में से एक ने बताना शुरू किया मैं सदैव स्वादिष्ट भोजन करता था तथा ब्राह्मणों को बासी अन्न देता था।

इसलिए मेरा नाम पयुर्षित पड़ा मेरा दूसरा साथी अन्न का अभलाषी बहुत से ब्राम्हणों की हिंसा किया। इससे इसका नाम सूचीमुख हुआ। तीसरा भूखे ब्राम्हण के याचना करने पर भी कुछ देने के भय से शीघ्रता से भाग गया। इसलिए इसका नाम शीघ्रम हुआ। चौथा ब्राम्हणों के दान देने के भय से उद्विग्न होकर सदा घर पर ही स्वादिष्ट भोजन करता। इसलिए इसका नाम रोधक पड़ा। पांचवा हम लोगों से भी बड़ा पापी जो किसी के याचना करने पर चुपचाप खडा रहता था धरती कुरेदने लगता । इसलिए इसका नाम लेखक पडा। इतना सब होने के बाद भी हमारी दुर्दशा और बढ़ी जब लेखक कठिनाई से चल पाता, रोधक सिर नीचे करके चलते शीघ्रक पंगु हो गया । सूची का मुख सुई के समान हो गया। पयुर्षित की गर्दन लम्बी और पेट बडा हो गया। इस प्रकार के कर्मो को करते हुए हम लोग प्रेतयोनि का प्राप्त हुए है। यह सुनकर ब्राम्हण पृथ को बडा आश्चर्य हुआ। वे पूछे भाई तुम लोग कौन सा आहार लेते हैं। जिस पर तुम सब निर्भर रहते हो। प्रेतों कहा-ब्रम्हदेव हम लोगों का आहार बडा निन्दित है। आप सुनकर स्वंय घृणा से भर जायेगें। हमारा आहर पेशाब पखाना, बलगम, स्त्री के शरीर का मैल है। जिन घरों में पवित्रता नही है। वही हम सब भोजन करते है। जहाँ मानसिक लज्जा नही पतितों का निवास, जहाँ वलिवैश्व देव तथा वेदमन्त्रों का उच्चारण नही होता है। गुरूजनों का आदर नहीं होता, घरों में स्त्रियों का प्रभुत्व होता है। जहाँ क्रोध और लोभ का वास होता है। उसी घर में हमरा भोजन होता है। प्रेतों ने कहा-हे तपोनिधान आपके मुख से धर्मयुक्त मीठे वचन हम दुःखी जीवों को सुनने को मिला है। इसे हमें शानित का अनुभव हो रहा है। किस भयंकर कर्म करने से प्रेतयोनि में जाना पड़ता है। इसे हम सब आपके मुख से सुनना चाहते है। हे तपोधन आप हमें इन प्रेतयोनि से छुटकारा का उपाय बताइये। विप्रवर ने कहा जो मनुष्य एक रात्रि और तीन रात्रियों का तथा कृच्छ चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान करता है। वह प्रेतयोनि में नहीं पड़ता है। जो सम्पूर्ण जीवों के प्रति प्रेम रखता, जो मान-अपमान, सोना और मिट्टी, शत्रु-मित्र में समान भाव रखता वह भी प्रेत नही होता है। देवता, अतिथि, गुरू और पितरों को सदा पूजा करता, पितरों का श्रद्धा से श्राद्ध करता है। वह प्रेतयोनि में नहीं पड़ता। जो क्रोध, डाह से अभाव में भी क्षमावान और दानशील है। वह प्रेतयोनि में नही पडता। जो गौ ब्राम्हण, तीर्थ, पर्वत नदी और देवताओं को प्रणाम करता है।

वह प्रेतयोनि में नहीं विप्रवर पृथु ने कहा-प्रेतों यदि कोई द्विज और विशेषतः ब्राह्म शूद्र का अन्न खाकर उस पेट में लिये मर जाय वह प्रेत होता है जो आश्रम धर्म का त्यागकर मदिरा पीता, पर स्त्रीगामी, मांस खाने वाला वह प्रेतयोनि में पड़ता है। जो कोई अनाधिकारी पुरूषों से यज्ञ करवाता तथा अधिकारी की उपेक्षा करता है। शूद्र की सेवा नहीं करता है। मित्र की धरोहर को हड़प लेता, शुद्र का भोजन बनाता विश्वासघात करता, ब्रह्म हत्यारा, गोघाती, चोर शराबी, गुरूपत्नीगामी भूमि और कन्या का अपहरण करने वाला प्रेतयोनि जाता है। जो पुरोहित नास्तिकता में प्रवृत्त होकर अनेकों ऋत्विजे के लिये मिली दक्षिणा को अकेले हड़प लेता है। वह प्रेतयोनि में जाता है। उसे तपोनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी पृथु के साथ किये गये सत्संग के प्रभाव से उन पर (प्रेतों) बड़ा प्रभाव पड़ा। कबीर ने भी संगति प्रभाव के बारे में कहा हैं कि-

कबीर संगति साधु की, निष्फल कभी न होय ।
ऐसी चन्दन वासना, नीम न कहसी होय ।।
एक घड़ी आधी घड़ी, आंधी में पुनि आध ।
कबीर संगति साधु की, कटै कोटि अपराध ।।

संतो के संग का प्रभाव अमोघ होता है। उनका स्पर्श मात्र भी सत्संग का प्रभाव डालता है। निमाई के स्पर्श से एक चोर जो उनके आभूषण चुराने के निमित्त स्पर्श किया । उसका विचार बदल गया। हमारे सिद्ध गुफा संवाई धाम के साधकों ने ऐसे तमाम चमत्कार सद्गुरू की कृपा से कर चुके है । तपोधन ब्रह्माण देव जब इस प्रकार उनसे सत्संग कर रहे थे । उसी समय आकाश में अद्भूत वाद्यों की धुनि सुनाई देने लगी । पुष्पों की वर्षा होने लगी । आकाशवाणी हुई कि हे प्रेतों तपोनिष्ठ ब्राह्मण देवता से वार्तालाप तथा कथा श्रवण का पुण्य फल तुम सबको दिव्यगती प्रदान करती है। क्योंकि वार्ता के द्वारा ही तुम सबने प्रायश्चित रूपी अग्नि में अपने पापों की आहुति कर दी है। आओं इस सुन्दर विमान में आरूढ़ हो। यह विमान तुम्हारे लिए है।

इस प्रकार संत्संग के प्रभाव से वे मुक्त हो गये। तुलसीदास जी ने कलियुग जीवों के लिए कहा- मानसपुण्य होई नही पाप लेकिन मानस पुण्य नही बन पाता है। इसलिए हम सबको सत्संग कर पुण्य के भागी बनना चाहिए।

योगी ही उस अविनाशी को देखते हैं

(महाभारत से)

✲✲ श्री ब्रह्मचारी वीरेन्द्र द्वारा प्रेषित ✲✲

सनत्सुजात उवाच :

यत् तच्छुक्रं महज्ज्यो-
तिर्दीप्यमानं महद् यशः ।
तद् वै देवा उपासते,
तस्मात् सूर्यो विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्तं सनातनम् ॥

श्री सनत्सुजातजी कहते हैं- हे राजन् ! जो शुद्ध ब्रह्म परमात्मा है वह महान् ज्योतिर्मय दैदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है। सब देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी के प्रकाश से सूर्य प्रकाशित होते हैं, उस सनातन भगवान् का योगीराज साक्षात्कार करते हैं।

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति,
ब्रह्म शुक्रेण वर्धते ।
तच्छुक ज्योतिषां मध्येऽतप्तं
तपति तापनम् ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्तं सनातनम् ॥

शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति होती है तथा उसी से वह बृद्धि को प्राप्त होता है वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्मा ही सूर्यादिसम्पूर्ण ज्योतियों के अन्दर स्थित होकर सबको प्रकाशित कर रहा है एवं तपा रहा है, वह स्वंय सब प्रकार से अतप्त और स्वंय प्रकाश है, उसी सनातन भगवान का योगीराज साक्षात्कार करते हैं।

अधोऽवं अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये,
उमादेवी शिश्रियातेऽन्तरिक्षे
अतन्द्रितः सुवितुर्विवस्त्रा,
बुभौ विभर्ति पृथ्वीं दिवं च
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ।

जल की भाँति एक रस परब्रह्म परमात्मा में स्थित पाँच सूक्ष्म महाभूतों से अत्यन्त स्थूल पंच भौतिक शरीर के हृदयाकाश में दो देव-ईश्वर और जीव उसको आश्रय बनाकर रहते हैं। सबको उत्पत्र करने वाली सर्वव्यापी परमात्मा सदैव जाग्रत रहता है। वही इन दोनों को तथा पृथ्वी और द्युलोक को भी धारण करता है। उस सनातन भगवान् का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

उभौ च दैवे पृथ्वीं दिवं च
दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति ।
तस्माद् दिशः सरितश्च स्रवन्ति,
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

उक्त दोनों देवताओं को, पृथ्वी और आकाश की, सम्पूर्ण दिशाओं को तथा समस्त लोक समुदास को वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है। उसी परब्रह्म स दिशाएँ, प्रकट हुई हैं, उसी से सरिताएँ प्रवाहित होती है तथा उसी से बड़े-बड़े समुद्र प्रकट हुए हैं। उस सनातन भगवान का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

चक्रे रथस्य तिष्ठतोऽ
ध्रुवस्याव्यय धर्मणः ।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं
दिव्यमजरं दिवि ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ॥

जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि का संघात-शरीर विनाशशील है, जिसके कर्म अपने आप नष्ट होने वाले नहीं हैं, ऐसे इस शरीर रूप रथ के चक्र की भांति इसे घुमाने वाले कर्मसंस्कार से युक्त मन में जुते हुए इन्द्रिय रूप घोड़े उस हृदयाकाश में स्थित ज्ञानस्वरूप दिव्य अविनाशी जीवात्मा को जिस सनातन परमेश्वर के निकट ले जाते हैं, उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

न साध्ये तिष्ठिति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्
मनोपयायो मनसा हृदा च,
य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवतन्तं सनातनम् ॥

उस परमात्मा का स्वरूप किसी दूसरे की तुलना में नही आ सकता उसे कोई चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता है। जो निश्चयात्मिका बुद्धि से, मन से और हृदय से उसे जान लेते है, वे अमर हो जाते है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

द्वादशंपूगां सरितं पिवन्तो देवरक्षिताम् ।
मध्वोकन्तश्च तेतस्या संचरन्तीह घोटयम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जो दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि-इन बारह के समुदाय से युक्त है तथा जो परमात्मा से सुरक्षित है, उस संसार रूप भयंकर नदी के विषयरूप मधुर जल को देखने और पीने वाले लोग उसी में गोता लगाते रहते हैं। इससे मुक्त करने वाले उस सनातन परमात्मा का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरोमधु ।
ईशानः पर्वभूतेषु हविर्भूतकल्पयत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जैसे शहद की मक्खी आधे मास तक शहद का संग्रह करके फिर आधे मास तक उसे पीती रहती हैं, उसी प्रकार यह भ्रमणशील संसारी जीव इस जन्म में किये हुए संचित कर्म को विभिन्न योनियों में भोगता है। परमात्मा ने समस्त प्राणियों के लिए उनके कर्मानुसार कर्म फलभोग रूप हवि की अर्थात् समस्त भोग-पदार्थों की व्यवस्था कर रखी है। उस सनातन ब्रह्म का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

हिरण्यपर्णवत्यभिपद्य द्वापक्षकाः ।
तेतत्र पक्षियो भूत्वा प्रपतन्ति यथा दिशम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जिसके विषयरूपी पत्ते स्वर्ण के समान मनोरम दिखाई पड़ते है, उस संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष पर आरूढ़ होकर पंखहीन जीव कर्मरूपी पंखधारणा कर अपनी वासना के अनुसार विभिन्न यौनियों में पड़ते हैं, किन्तु योगी लोग उस सनातन परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

पूर्णात् पूर्णन्युद्वरन्ति
पूर्णात् पूर्णानि चक्रिरे ।
हरन्ति पूर्णात् पूर्णानि
पूर्ण मेवावशिष्यते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ।

पूर्ण परमेश्वर से पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, पूर्णसत्ता स्फूर्ति पाकर ही वे पूर्ण प्राणी चेष्टा करते हैं । फिर पूर्ण से ही पूर्ण ब्रह्म में उनका विलय होता है तथा अन्त में एकमात्र पूर्णब्रह्म ही शेष रह जाता है। उस सनातन परमात्मा का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

तस्माद् वै वीयुरायातस्तस्मिश्च
प्रपतः सदा
तस्मादग्निश्च सोमश्च
तस्मिश्च प्राण आततः ॥

उस पूर्ण ब्रह्म से ही वायु का आविर्भाव हुआ है और उसी में यह चेष्टा करता है। उसीसे अग्नि और सोम की उत्पत्ति हुई है। तथा उसी में यह प्राण विस्तृत हुआ है।

सर्वमेव ततो विद्यात् तत्,
तद् वक्तुं न शक्नुमः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ॥

उन सबका वर्णन अलग-अलग नहीं किया जा सकता अतएव तुम इतना ही समझो कि सब कुछ उस परमात्मा से प्रकट हुआ है। उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते है।

अपानं गिरति प्राणः
प्राणं गिरति चन्द्रमाः ।
अदित्यो गिरते चन्द्र-
मादित्यं गिरते परः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ॥

अपान को प्राण अपने में विलीन कर लेता है, प्राण को चन्द्रमा, चन्द्रमा को सूर्य और सूर्य को परमात्मा अपने में विलीन कर लेता है उस सनातन परमेश्वर का योगी लोग साक्षात्कार करते है।

एकं पादं नोत्क्षिपति,
सलिलाद्धंस उच्चरन्।
तं चेत सत्मृर्ध्वयि
न मृत्युर्नामृत्रं भवेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्त सतातनम् ॥

इस संसार सलिल से ऊपर उठा हुआ हंस रूप परमात्मा अपने एक पाद (जगत्) को ऊपर नहीं उठा रहा है, यदि उसे भी सदा के लिए मिट जाय उस सनातन भगवान् का योगीजन साक्षात्कार करते है।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदैजनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

हृदय देश में स्थित वह अंगुष्ठ मात्र जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से सदा जन्म-मरण को प्राप्त होता है। उस सबके शासक, स्तुति के योग्य, सर्वसमर्थ, सबके आदिकारण एवं सर्वत्र विराजमान परमात्मा को मूढ़ जीव नहीं देख पाते किन्तु योगीजन उस सनातन परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं।

महर्षि दयानंद और योग

✲✲ श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' ✲✲

आर्य समाज के प्रवर्तक ओर वेदार्थों के अद्वितीय व्याख्याता महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वंय एक बहुत बड़े योगी थे तथा योग के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी, यह तथ्य उनकी जीवनचर्या के अवलोकन और उनके विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से भली प्रकार विदित हो जाता है। जैसे आप्त ग्रन्थों के नाम पर फैलाये गये आडम्बरों और पाखण्डों का उन्होंने खुलकर विरोध किया है वैसे ही योग और-दर्शन के नाम पर चलाये जा रहे पाखण्ड और आडम्बर के भी वे प्रबल विरोधी थे । चमत्कार दिखाना या चमत्कार प्रदर्शन की आड़ में-भोली और भावुक जनता के मन को भ्रमित कर देने मात्र को-वे योग अथवा उसका कोई अंग मानने की तैयार नहीं थे।

अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के उपासना विषयक प्रकरण में ऋषि ने अथर्व-वेद और यजुर्वेद के कतिपय मन्त्र उद्धृत करते हुए योगोपवासना पर सबसे अधिक बल दिया है तथा यम-नियम की परिपालना की संपुष्टि करते हुए उनकी विस्तृत व्याख्या की है।

ऋग्वेद अध्याय ४ और यजुर्वेद अध्याय ११ के मन्त्रों के उद्धरण के साथ उन्होंने (ऋषि ने) अपने उपासना विषय का आरम्भ किया है जिसमें योगोपासना पर ही बल दिया गया है। यथा-

युञ्जते मन युत युञ्जते धियो,
विप्रा विप्रस्य वृदुला विपश्चितः
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक,
इन्माही देवस्य सवितुः परिष्टतिः ॥
ऋ0 अ0 4/व/24द1

'युञ्जते' शब्द की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है। उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

आगे श्री महर्षि पुनः लिखते हैं- और जो लोग ईश्वर के उपासक (विप्रः) अर्थात् बड़े-बड़े बुद्धिमान (होत्राः) उपासना योग के ग्रहण करने वाले हैं वे (विप्रस्य) सबको जानने वाला, (वृहतः) सबसे बड़ा परमेश्वर है उसके बीच में (मनः युञ्जते) अपने मन को ठीक-ठीक युक्त करते हैं । तथा (उतधियः) अपनी बुद्धि वृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी (युञ्जते) सदा परमेश्वर में ही स्थिर करते हैं । जो परमेश्वर सब जगत की (विदधे) धारण और विधान करता है (वयुनाविदेक इत्) जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रजा का भी साक्षी है वही एक परमात्मा सर्वत्रव्यापक है कि जिससे परे को कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। (देवस्य) उस देव अर्थात् जगत के प्रकाश और सवितुः सबकी रचना करने...

वाले परमेश्वर की (परिष्ट्रीय) हम सब लोग सब प्रकारसे स्तुति करें। कैसी है। वह स्तुति-सही-सबसे बड़ी अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नहीं सकती।

युञ्जानः प्रथमं मनः,
तत्वाय सविता धियम् ।
अग्नेज्योर्तिर्निबाचाय्य,
पृथिव्या अध्यामरत ॥
यजु0 अ0 11 बं0 2

(युञ्जानः । योग की करने वाले मनुष्य (तत्वाय) तत्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए प्रथम मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब (सविता) परमेश्वर उनकी (धियम्) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने मन में युक्त कर लेता है। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके (अभ्यामरत् यथावत् धारणा करते हैं। (पृथिव्या, पृथिवी के बीच में यही योगी का लक्षण है।

अर्थात् योगी वही है जिसका मन परमात्मा में लीन हो गया है।

आगे यजुर्वेद के दूसरे मन्त्र में भी योगी-परमात्मा की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है :

युक्तेन मनसा वयदेवस्यः सवितुः सर्वे ।
स्वर्गाय शक्त्या ॥

अर्थात् सब मनुष्य इस प्रकार की इच्छा करें कि (वयम्, हम लोग (स्वर्गवास) मोक्ष सुख के लिए (शक्या) यथायोग्य सामर्थ के द्वार से (देवस्य परमेश्वर) की सृष्टि में उपासना योग करके अपने आत्मा को शुद्ध करें कि जिससे (युक्त न मनसा) अपने शुद्ध मन से परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द की प्राप्त हों।

यजुर्वेद के १२ वें अध्यापका एक और मंत्रांश लीजिए।

युनक्त सीरा वि युगा तनुर्ध्य कृते योनी व पतेहं बीजम् ।

अर्थात् हे उपासक लोगों तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द को विस्तार करो । इस प्रकार करने में (कृते योनी) योनि अर्थात् अपने अन्तः करण का शुद्ध करके और परमानन्द स्वरूप परमेश्वर में स्थिर करके उसमें उपासना विधान से विज्ञान रूप (बीज) बीज को अच्छी प्रकार से बोओ।

महर्षि ने आगे एक और मन्त्र का उल्लेख करते हुए उसका अर्थ इस प्रकार किया है :

हे परमेश्वरर्य्या युक्त मंगलमय परमेश्वर आपकी कृपा से मुझको उपासना योग प्राप्त हो तथा उससे मुझको सुख भी मिले । इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय, दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार, विद्या स्वभाव शरीर और बल ये अट्ठाईस सब कल्याणों में करें तथा हमभी उस योग को सदा सेवन को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते हैं इत्यादि ।

स्वामी जी ने योगाङ्गों और महर्षि पतंजलि के यौगिक सूत्रों पर अपनी महत्वपूर्ण व्याख्या की है। कतिपय उद्धरण पढ़िए:-

'चित्त की वृत्तियों को सब वृत्तियों से हटाकर शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते है। और वियोग उसको कहते है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरूद्ध बुराइयों में फँसकर उससे दूर हो जाना।'

'जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध द्वारा रोक देते हैं वह जिस ओर नीचा होता है वहीं चल के कहीं ठहर जाता है इसी प्रकार मन को वृत्ति भी जब बाहर से रूकती है तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। एक तो चित्त की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन और है दूसरा यह कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी को वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है। और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में डूबी रहती है। उपासक योगी की तो ज्ञान रूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फँसती जाती है।'

चित्तवृत्ति की ऐसी व्याख्या करके उन्होंने योग की महत्ता का वर्णन करते हुए प्रणायाम, ब्रह्मचर्य शौच आदि सभी को अपनाने पर बल दिया हैं।'

ईश्वर प्रणिधान योगी के लिए अति आवश्यक है। स्वामीजी ने इसीलिए लिखा है-'ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होके मनुष्य समाधि योग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।' कुछ अन्य योग-सूत्रों अथवा योगाङ्गों पर स्वामीजी की अपनी व्याख्या इस प्रकार है :

ब्रह्मचर्य-

'ब्रह्मचर्य्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य बाल्यावस्था में विवाह न करें उपस्थ इन्द्रिय का संयम रखे, वेदादि शास्त्रों को पढ़ता-पढ़ाता रहे, विवाह के पीछे ऋतु-गामी बना रहे और परस्त्री गमन आदि व्यभिचार को मन कर्म वचन से त्याग देवे, तब दो प्रकार का बल बढ़ता है-एक शरीर का, दूसरा बुद्धि का । उसके बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है।

अपरिग्रह-

'अपरिग्रह का फल यह है कि जब मनुष्य विषयासक्ति से बचकर सर्वथा जितेन्द्रिय रहता है तब मैं कौन हूँ कहाँ से, आया हूँ और मुझको क्या करना चाहिए अर्थात् क्या काम करने से मेरा कल्याण होगा । इत्यादि शुभ गुणों का विचार उसके मन में स्थिर होता है।'

'यह यम कहाते हैं इनका ग्रहण करना उपासकों को अवश्य चाहिए ।'

शौच-

'शौच से अन्तःकरण की शुद्धि मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों का जय तथा आत्मा के देखने और जानने की योग्यता प्राप्त होती है।'

देश बन्ध और धारणा-

'जब उपासना योग के उपरोक्त पाँचों अंग

सिद्ध हो जाता है तब उसका छठा अंग धारणा की यथावत प्राप्त होती है। 'धारणा' उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके, ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना।'

तथा (तत्र प्र०) धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में, अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ, इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना। इसी का नाम 'ध्यान है।'

इन सात अंगों का फल समाधि है- (तदेवार्थ०) जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है, कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से, जिस चीन का ध्यान करता है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोडा समय भीतर ही रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न हो के फिर बाहर को आ जाता है।

(त्रयमेकत्र०) जिस देश में, धारणा की जाय, उसी में ध्यान, और उसी में समाधि, अर्थात् ध्यान करने से योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को 'संयम' कहते हैं। जो एक ही काल में तीनों का मेल होना है, अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उसमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है। परन्तु जब समाधि होती है, तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है।

यह उपासायोग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता, क्योंकि (नाविरतो०) जब तक मनुष्य दुष्ट कर्मों से अलग होकर, अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता, तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े वा सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

(तपःश्रद्धे०) जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके, अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं। जो लोग अधर्म के छोडने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान हैं, जो भिक्षाचार्य्य आदि कर्म करके सन्याससे वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य (सूर्य्यद्वारेण०) प्राणद्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके, (विरजाः) अर्थात् सब दोषों से छूट के, परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते है, जहाँ कि पूर्ण पुरुष, सब में भरपूर, सबसे सूक्ष्म, (अमृतः) अर्थात् अविनाशी, और जिसमें हानि लाभ कभी नहीं होता, ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके, सदा आनन्द में रहते हैं।

शेष अगले अंक में....

विचार-कण

दुखियों के दुःख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़, भगवान तुम्हें सफलता देंगे ही । मैंने अपने हृदय में इस भार को मस्तिष्क में इस विचार को रख कर बारह वर्ष तक भ्रमण किया । मैं तथाकथित बड़े और धनवान व्यक्तियों के दरवाजे पर गया। वेदना-भरा हृदय लेकर और संसार का आधा भाग पार कर, सहायता प्राप्त करने के लिए मैं इस देश (अमेरिका) में आया । ईश्वर महान् है। जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस भूखण्ड में शीत से भूख से भले ही मर जाऊँ, पर हे तरुणों, मैं तुम्हारे लिए एक वसीयत छोड़े जाता हूँ, और वह है यह सहानुभूति-गरीबों, अज्ञानियों और दुःखियों की सेवा के लिए प्राणपण से चेष्टा ।

मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुयें वृथा तथा क्षणभंगुर हैं, पर वे ही जीवित हैं, दूसरों के लिए जीते हैं, शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आँसू पोंछने या अनाथों को रोटी देने में असमर्थ है।

SIDDHYOG

POSTAL Regd No. OAG-019/24-26

प्रेषण कार्यालय:

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सगवाँ (एलापुर) आगरा (२८२०१०)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री / श्रीमती

स मुक्तिपदमर्हति

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्नृपुरादिषु ।

मोहो विनिर्जितोयेन स मुक्तिपदमर्हति ।।

शरीरादि में मोह रखना ही मुमुक्षु की बड़ी भारी मौत है। जिसने मोह को जीत लिया है वही मुक्तिपद का अधिकारी बनता है।

प्रेषक : सिद्धयोग (हिन्दी मासिक) श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सगवाँ (एलापुर) आगरा (२८२०१०) द्वारा प्रकाशित।

समाचार-पत्रों के डाक संस्करण की सुविधा के लिए पंजीयन संख्या : सिद्धयोग (हिन्दी मासिक) आगरा (उ.प्र.) भारत सरकार (डाक विभाग) से प्रकाशित।